

व्यवहारचारित्र का अधिकार है। अन्दर कलशों में तो निश्चय आता है अर्थात् जिसे प्रथम आत्मा पवित्र शुद्ध आनन्द और ज्ञातादृष्टा है, ऐसा जिसे प्रथम भान हुआ हो, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं। तदुपरान्त यहाँ तो बात है। जिसे आत्मा का कल्याण करना है, उसे उस कल्याणस्वरूप भगवान आत्मा का पहले अनुभव करना चाहिए, अनुभव के बिना यह आत्मा क्या चीज़ है, इसकी प्रतीति या विश्वास यथार्थ नहीं हो सकता। समझ में आया? तदुपरान्त यहाँ तो व्यवहारचारित्र का अधिकार है न? जिसे आत्मदर्शन, शुद्ध चैतन्यसत्ता, पुण्य-पाप के राग से भिन्न, ऐसा भान हुआ; तदुपरान्त जिसे चारित्रदशा होती है, अर्थात् स्वरूप में रमणता, आनन्दस्वरूप में रमणतारूपी निश्चय / सच्चा चारित्र होता है, उसे ऐसे व्यवहारचारित्र के विकल्पों की मर्यादा है। आहाहा! इतनी इसमें शर्तें हैं। समझ में आया?

जिसे आत्मा की परमानन्ददशा, ऐसी मुक्ति की जिसे स्पृहा है, उसे तो प्रथम आत्मा मुक्तस्वरूप आनन्द है, ऐसी तो उसे दृष्टि अनुभव में पहले होना चाहिए। इसके बिना उसे चारित्र नहीं होता और मात्र सम्यग्दर्शन से भी कहीं मुक्ति नहीं होती। सम्यग्दर्शन उपरान्त स्वरूप में रमणतारूपी चारित्र हो, उसे ऐसे व्यवहारसमिति—देखकर चलना इत्यादि शुभभाव होता है। जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं, जिसे अन्तरचारित्र ही नहीं, उसे ऐसा व्यवहार ईर्यासमिति का व्यवहार भी नहीं हो सकता।

श्लोक-८३

८३ वाँ कलश है, ८२ तक आ गया है। यह ईर्यासमिति का चलता है। आहाहा!

(मालिनी)

नियतमिह जनानां जन्म जन्मार्णवेऽस्मिन्,
समिति-विरहितानां काम-रोगातुराणाम् ।
मुनिप कुरु ततस्त्वं त्वन्मनो-गेह-मध्ये,
ह्यपवरकममुष्याश्चारुयोषित्सुमुक्ते : ॥८३॥

(हरिगीतिका)

विश्व में निश्चित यही, इस जन्मरूपी उदधि में।
समिति विरहित कामरूपी, रोगपीडित जन्मते ॥
इसलिए हे मुनी! अपनी, चित्तरूपी निलय में।
इस मुक्तिरूपी सुन्दरी के लिए, भव्य निवास रख ॥

[श्लोकार्थः—] यहाँ (विश्व में) यह निश्चित है कि इस जन्मार्णव (भवसागर में) समितिरहित कामरोगातुर (इच्छारूपी रोग से पीडित) जनों का जन्म होता है। इसलिए हे मुनि! तू अपने मनरूपी घर में इस सुमुक्तिरूपी सुन्दर स्त्री के लिये निवासगृह रख (अर्थात्, तू मुक्ति का चिन्तन कर)।

श्लोक-८३ पर प्रवचन

नियतमिह जनानां जन्म जन्मार्णवेऽस्मिन्,
समिति-विरहितानां काम-रोगातुराणाम् ।
मुनिप कुरु ततस्त्वं त्वन्मनो-गेह-मध्ये,
ह्यपवरकममुष्याश्चारुयोषित्सुमुक्ते : ॥८३॥

श्लोकार्थः : यहाँ (विश्व में) यह निश्चित है कि इस जन्मार्णव (भवसागर में) समितिरहित.... जीव भटकते हैं। आत्मा के आनन्द के परिणमनरहित दशावाले भटकते

हैं। समझ में आया ? आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द, उसके भान बिना और उसकी रमणता बिना (भटकते हैं)। समिति अर्थात् स्वरूप में रमणता होना। आनन्द में रमणता, वह निश्चयसमिति और वह सच्चा चारित्र कहा जाता है। ऐसा जिसे नहीं है, वे **जन्मार्णव (भवसागर में) समितिरहित कामरोगातुर (इच्छारूपी रोग से पीड़ित)...** हैं। जिसे कुछ करना ही नहीं, ऐसा स्वरूप है। ऐसा जिसे भान नहीं है, उसे तो इच्छारूपी रोग (है), उसमें आतुर है। अज्ञानी ऐसे कुछ करूँ, ऐसा करूँ, पुण्य करूँ, पाप करूँ, पर का करूँ। स्वसन्मुख की दृष्टि छोड़कर परसन्मुख के विकार परिणाम में कर्ता से पीड़ित दुःखी है वह। आहाहा! चौरासी के अवतार में भटकनेवाला वह आत्मा के स्वरूप की अन्तर रमणता के अभाव में पर की इच्छा के कार्य में रूका हुआ (है)। स्वयं ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, उसमें भान होकर रमना चाहिए कि जो मुक्ति का अथवा संसार के अन्त का उपाय है। आहाहा! उसे नहीं करके कामातुर अर्थात् **तुराणाम् इच्छा** के रोग से पीड़ित प्राणी, ऐसा कहते हैं।

इच्छा, वह दुःख है। यह करना... यह करना... यह करना... ऐसी इच्छा से पीड़ित प्राणी दुःखी होते हुए **जनों का जन्म होता है**। ऐसे जीवों का चौरासी में अवतार होता है। आहाहा! समझ में आया ? (**विश्व में**) यह निश्चित है... ऐसा। निश्चित ही है कि भवसागर में तो आत्मा के स्वरूप की रमणतारहित कामातुर **जनों का जन्म होता है**। आहाहा! कलंकित अवतार। यह सब अवतार, वह कलंक है, कहते हैं। भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञान का सागर आत्मा है, उसकी जिसे अन्तर रमणता... पहले रमणता भी क्या वस्तु है, उसका भान हो और फिर रमणता हो। अर्थात् भान और रमणता रहित प्राणी, ऐसा कहते हैं। इच्छा से पीड़ित वे जन्म धारण करते हैं। आहाहा!

इसलिए हे मुनि! मुनिप शब्द है। प अर्थात्... **मुनिप** है न ? चेतनजी ! परन्तु क्या ? प क्यों हैं ? हमारे पण्डित कहते हैं। मुनिपति ऐसा कहते हैं। हे मुनि ! ऐसा। आहाहा ! तू अपने मनरूपी घर में... है न ? **कुरु ततस्त्वं त्वन्मनो-गेह-मध्ये**, आहाहा ! हे मुनि ! तू अपने मनरूपी घर में **इस सुमुक्तिरूपी सुन्दर स्त्री...** परमानन्द की परिणति होना, इसका नाम मुक्ति है। इसके लिए **निवासगृह...** अन्तर में मुक्ति की दशा की रमणता का समय ले, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! तेरे घर में ऐसी मुक्तिरूपी निवास का घर रख, कमरा उसके लिए रख, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

भगवान आत्मा इन पुण्य-पाप के विकल्प से भी रहित है, ऐसी दृष्टि हुई है, ऐसे मुनि को कहते हैं कि अब तू तेरे स्वरूप में रमण कर। मुक्ति को तेरे घर में बसा, ऐसा कहते हैं। बन्धन के भाव की दृष्टि से तू छूटा है, अब दृष्टि सहित में स्वरूप में राग से मुक्त होने की ऐसी मुक्तिरूपी स्त्री का घर रख। आहाहा! उसका निवास-घर कमरा रख। आहाहा! यह पुण्य और पाप को रखने का भाव है न? कहते हैं, वह तेरा मिथ्यात्वभाव है। वह तेरे जन्मने के लक्षण हैं। चौरासी में जन्मना... आहाहा!

इसलिए हे मुनि! राग से रहित पूर्ण परमात्मदशा, सिद्धदशा के कारणरूप तेरे मन में-निर्मल पर्याय में उसका चिन्तन कर, उसका ध्यान कर, उसमें रमणता कर कि जिससे तुझे मुक्ति हो। भारी कठोर शर्ते। आहाहा! देखकर चल, ईर्यासमिति की बात यहाँ नहीं ली है। वह तो बीच में व्यवहार होता है, ऐसा ज्ञान कराया है। करने का तो प्रभु! तुझे अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में परिणति करना, वह तेरी समिति है। निश्चय, हों! यह व्यवहार सम्यग्दर्शन वह वापस नहीं। आहाहा! यह तो निर्भ्रान्त हूँ। निभ्रत पुरुषों का काम है, ऐसा आया था। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की मूर्ति का जिन्हें एकाग्रपना हुआ है, वे निभ्रत पुरुष सब जगत की चिन्ताओं से मुक्त हैं। समझ में आया? ऐसी मुक्ति का तू चिन्तवन कर, ऐसा कहते हैं। चिन्तवन का अर्थ अन्दर एकाग्रता करना। ज्ञानस्वभावभाव ऐसा तू, उसमें एकाग्र हो। वह मुक्ति का उपाय है और उस मुक्ति को तेरे घर में बसाने का कारण है। आहाहा! ८४ कलश।

यह सत्य की बात तो जगत में बाहर में रही नहीं और वह व्यवहार अकेला रहा गया। खोटी लकीरें। सर्प गया और लकीरें रहीं। ऐसा चलना, ऐसा खाना, यह करना... परन्तु वह तो सब विकल्प की बात है, सुन न! शुभराग है, परन्तु उसके पहले अन्तर रागरहित स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप के अनुभव बिना स्वरूप में रमणता की समिति कहाँ से आयेगी? आहाहा! जिसने स्वरूप ही देखा नहीं, जाना नहीं, दृष्टि में लिया नहीं; उसे स्वरूप में रमणता कहाँ से होगी? ऐसा कहते हैं। रमणता अर्थात् चारित्र। आहाहा!

कहते हैं, वरना चौरासी के अवतार में जन्मना पड़ेगा। आहाहा! कोई वहाँ तेरा सहायक नहीं है। इसलिए आत्मा अपने निज स्वभाव की सम्हाल करके उसमें रमणतारूपी समिति प्रगट कर, जिससे तुझे जन्म-मरण मिट जाए, यहाँ यह बात है। आहाहा!

श्लोक-८४

(आर्या)

निश्चयरूपां समितिं सूते यदि मुक्तिभागभवेन्मोक्षः ।
बत न च लभतेऽपायात् सन्सार-महार्णवे भ्रमति ॥८४॥

(वीरछन्द)

निश्चयरूप समिति पाले तो जीव मुक्ति को प्राप्त करे ।
किन्तु अरे रे! समिति नाश से मुक्ति न हो भव में भटके ॥

[श्लोकार्थः—] यदि जीव, निश्चयरूप समिति को उत्पन्न करे तो वह मुक्ति को प्राप्त करता है—मोक्षरूप होता है परन्तु समिति के नाश से (अभाव से), अरे रे! वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता, किन्तु संसाररूपी महासागर में भटकता है ।

श्लोक-८४ पर प्रवचन

८४ वाँ कलश !

निश्चयरूपां समितिं सूते यदि मुक्तिभागभवेन्मोक्षः ।
बत न च लभतेऽपायात् सन्सार-महार्णवे भ्रमति ॥८४॥

श्लोकार्थः—यदि जीव, निश्चयरूप समिति को उत्पन्न करे... क्या कहते हैं ? देखो ! दिगम्बर सन्तों की सनातन परिणति की प्रणालिका । है अधिकार व्यवहार का, तो भी... होवे जाननेयोग्य । आचरणयोग्य तो स्वरूप में रमणता, वह है । नव तत्त्व में संवर-निर्जरा की मुनि की दशा कैसी होती है, उसका यहाँ ज्ञान कराते हैं । चौथे गुणस्थान में संवर-निर्जरा अल्प होती है, पाँचवें गुणस्थान में विशेष होती है, मुनि को बहुत विशेष होती है और अकेला पुण्यभाव ही होता है, ऐसा नहीं है — ऐसा कहते हैं । मात्र ईर्यासमिति-देखकर चलना, वह तो विकल्प, राग है । वह कहीं मुनिपना नहीं और वह कहीं धर्म नहीं है । आहाहा !

कल किसी का पत्र आया था कि ये सब मन्दिर बनाते हैं और होते हैं, इसकी अपेक्षा तो आत्मा में उतरने की बात ढूँढ़ियों को करो न अब। लो, किसी का पत्र आया था, बापू! भाई! यह शुभराग होता है। यहाँ देखो न! व्यवहारचारित्र होता है, उसका ज्ञान कराते हैं। शुभराग, भगवान की भक्ति आदि धर्म नहीं है परन्तु अशुभराग से बचने को बीच में ऐसा भाव आता है। यदि उसे कहे कि नहीं, नहीं; यह छोड़ो तो फिर यह पढ़ना, सुनने में भी शुभराग है। यह सुनना भी शुभराग है। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्रुव का घोंटन करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव का घोंटन करे, वह तो पहले अन्दर विकल्प है। ऐई! उसे अन्तर में दृष्टिसहित की रमणता तो अमुक काल रह सकती नहीं; इसलिए उसे ऐसा शुभभाव होता है। यह पत्र किसी का आया था। कहाँ का था? मेरठ का। अन्तर्देशी आता है। ऐसी कि इस प्रकार... यहाँ तो भाई! हम कहते नहीं। यह तो लोग उनके अनुसार मन्दिर आदि शास्त्र में होते हैं, इसलिए बनाते हैं। होते हैं। होते हैं, वह तो उनके कारण होते हैं। तब यहाँ कहे उतारो इसमें, ढूँढ़िया को मूर्ति जँचती नहीं, इसलिए उसे चैतन्य में उतरो, ऐसा कहते हैं परन्तु अभी चैतन्य का भान नहीं। आहाहा! अभी उसमें मूर्ति है और उसका भक्तिभाव आता है, ऐसी जिसे खबर नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? तब तो यह श्रवण करना, वह भी शुभभाव है। यह पढ़ना भी शुभभाव है। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, ऐसा करना भी एक शुभराग है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह तो राग की व्याख्या, बापू! उसे खबर नहीं। वे सब विकल्प आते हैं, होते हैं। वह धर्म नहीं है। आहाहा! धर्म तो उन विकल्पों से रहित चैतन्यमूर्ति भगवान का अनुभव होकर दृष्टि हो, वह धर्म की शुरुआत है और पश्चात् स्वरूप में रमणता करना, ओहो! वह तो धन्य अवतार! उनकी दशा आनन्द में झूलती होती है, उसका नाम चारित्र है। चारित्र कहीं वस्त्र छोड़कर नग्न हो गये, इसलिए चारित्र (हो गया), ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो जिसे जन्म-मरण मिटाकर मुक्ति करनी हो, उसकी बात है, भाई! तो उसे तो कहते हैं, यदि जीव, निश्चयरूप समिति को उत्पन्न करे... देखो! अर्थ ऐसा है न?

निश्चय भगवान आत्मा, अन्तरस्वरूप में आनन्द और ज्ञान का सागर आत्मा है। आत्मा वस्तु है न? पदार्थ है न? तो है तो उसमें कुछ शक्ति, गुण, स्वभाव होगा या नहीं? या जड़ में ही गुण और स्वभाव होते हैं और आत्मा में नहीं होते? अरे! जड़ में गुण और स्वभाव है, यह भी निर्णय किसने किया? यह तो आत्मा ने (निर्णय किया)। आत्मा अन्दर ऐसा त्रिकाली कायम रहनेवाला उसका स्वभाव है। ज्ञान और आनन्द और स्वच्छता, शुद्धता, पवित्रता, ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसे स्वभाव में **समिति को उत्पन्न करे...** उसमें से निश्चय। शुद्धता उत्पन्न करे, शुद्धता का स्वभाव है, उसमें से शुद्धता उत्पन्न करे। पुण्य-पाप के परिणाम नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

निश्चयरूप समिति... अन्तर आत्मा आनन्द में परिणमे, आनन्द में रमे—ऐसी जो सच्ची समिति, उसे पहले तो उत्पन्न करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उत्पाद है न? वह तो पर्याय है न? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध और आनन्द का धाम, ध्रुवधाम में से शुद्ध निश्चयरूप समिति प्रगट करे। यह वीतरागदशा है। कषाय के क्लेश से रहित, अकषाय के आनन्दसहित, ऐसी समिति को उत्पन्न करे, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! गजब धर्म की व्याख्या, भाई! तो वह मुक्ति को प्राप्त करता है.... कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु: बढ़ते-बढ़ते.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बढ़ते-बढ़ते वह उत्पन्न करता है, उसमें से ही मुक्ति होती है। यह समिति, वह समिति है और आगे बढ़ा वह। परिणमन है न! वह सब समिति का परिणमन है। थोड़ा, बहुत, ज्यादा।

परन्तु समिति के नाश से... आहाहा! कहते हैं, शुद्ध भगवान आत्मा आनन्द का स्वरूप है, उसमें जिसकी दृष्टि और रमणता नहीं, **अरेरे...** ऐसा कहते हैं। **बत है न? अरे रे! वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता,**... वह चौरासी के अवतार में भटकेगा। आहाहा! कौआ और कुत्ता, कंथवा और हाथी, नारकी और पशु ऐसे अवतार... आहाहा! बापू! तुझे खबर नहीं। जिसे भगवान आत्मा अन्तरस्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, तीर्थंकरदेव केवली परमात्मा ने (देखा) वह अनन्त आनन्द और ज्ञान और शान्ति से भरपूर तत्त्व है। उसका आश्रय करके निर्मल दशा करे, उसे समिति कहो, मोक्षमार्ग कहो - सब एक ही है। उसे संसार का किनारा आता है, परन्तु अरे रे! खेद है कि प्रभु! अपनी जाति को नहीं सम्हाल

कर, स्वयं आनन्द का धाम आत्मा है, उसके सन्मुख में रमणता, श्रद्धा नहीं करता। अरे रे! राग की क्रिया के भाव में पड़ा, वह मोक्ष नहीं प्राप्त करता – ऐसा कहते हैं। लो, यहाँ तो आत्मा की रमणता रहित अकेली ईर्यासमिति व्यवहार, वह भी मोक्ष नहीं प्राप्त करता, भाई! ऐसा कहा है। आत्मा का अनुभव और अन्तर रमणतारहित अकेला ईर्यासमिति का शुभभाव है, वह भी संसार है, उसका फल संसार है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो समिति ही कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो लोग व्यवहार से कहते हैं न! ऐसे बराबर देखकर चलता है, किसी जीव को दुःख न हो, ऐसे चलता है। अरे! परन्तु अन्दर में वस्तु है, उसमें तो देखकर चलता नहीं। उसे देखा नहीं और देखे बिना अन्दर में रमणता कहाँ से होगी? भारी कठिन, भाई! अभी तो यह बात सुनने को मिलती नहीं। अरे रे! भाई! यह मुनि यहाँ खेद करते हैं। प्रभु! यह तेरे ऐसे आनन्दस्वरूप में अन्तर-सन्मुख की दृष्टि और रमणता बिना अकेली राग की क्रिया से मुक्ति नहीं होगी, ऐसा कहते हैं। मोक्ष नहीं होगा, अवतार होगा। आहाहा! वह तो अवतार चाहे स्वर्ग का हो तो भी वहाँ अंगारे का दुःख है, प्रभु! कषाय की भट्टी जलती है। आहाहा!

अरे रे! वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता, किन्तु संसाररूपी महासागर में भटकता है। आहाहा! चौरासी के अवतार अथाग, उसमें भ्रमेगा। अज्ञानी उनमें भ्रमेगा, ऐसा कहते हैं। जिसे स्वरूप भगवान आत्मा की समिति अर्थात् जिसे अन्दर शुद्धपरिणति, शुद्ध है— ऐसा भान नहीं है और इसलिए शुद्ध की परिणति दशा उसे नहीं है, ऐसा। इसलिए उसे मात्र अशुद्ध परिणति है, ऐसा कहते हैं। चाहे तो पुण्य का भाव हो या पाप के भाव हों, दोनों मलिन भाव हैं। दोनों संसार में जन्म लेने के कारण हैं। आहाहा! यह ८४वाँ कलश हुआ, लो।

संसाररूपी महासागर... भाषा तो ऐसी है न? महार्णवे आहाहा! संसार बड़ा समुद्र है। पृथ्वी के अवतार, जल का अवतार, अग्नि का अवतार, वायु का अवतार, चींटी, कौआ, कुत्ता—ऐसे अवतार कर-करके कचूमर निकल गया। जहाँ कुछ मनुष्य हों, उसमें फिर पाँच-पच्चीस लाख पैसे (रुपये) हों, स्त्री, पुत्र ठीक हों, धन्धा अच्छा जमे तो हम सुखी हैं। मूढ़ है, सुन न! तूझे कौन सुखी कहता है? दुःख के अंगारों में जल रहा है। ऐ..

हिम्मतभाई! आहाहा! वह दुःख के क्लेश के अंगारों में जल रहा है। ये सेठ, राजा और देव सब दुःख के अंगारों में सुलग रहे हैं। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी खबर नहीं।

मुमुक्षु : तन-मन थरथरता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तन तो कुछ थरथरता न हो। अन्दर राग थरथरता है। विकार-विकार। राग और द्वेष की आकुलता होती है। आहाहा! अभी धन्धा बहुत अच्छा दमदार चलता है। लोग क्या कहें? धमाकेदार। ऐसी सब अज्ञानी की भाषा होती है। अभी धमाकेदार चलता है। लाख-लाख, दो-दो लाख की आमदनी। बीस हजार का खर्च, एक लाख अस्सी हजार बढ़ते हैं परन्तु अब क्या है? सुन न! दुःख के अंगारे सुलगते हैं, तुझे भान नहीं है। वह जड़ मेरा है और जड़ लक्ष्मी मुझे मिली, यह तेरी मान्यता ही मूर्खता से भरपूर है। दुःख के अंगारों में सुलग रहा है और मानता है कि मैंने किया है। कैसे हैं भाई! अभी बादशाही है। ठीक। अक्ल का खां है, कहते हैं। गुणवन्तभाई! यहाँ तो ऐसा है, भाई! आहाहा! आनन्द के धाम प्रभु आत्मा पर तेरी नजर नहीं होती और नजर मात्र पुण्य और पाप के राग में, पर में मूढ़ होकर चौरासी के अवतार में जन्म लेने के तेरे लक्षण हैं। आहाहा! ऐसा यहाँ कहते हैं। शान्तिभाई! क्या होगा ऐसा? गजब भाई! धर्म बहुत कठिन।

मुमुक्षु : दुःख को दुःख मानता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख की खबर ही नहीं है। बस, पाँच-पच्चीस लाख मिले, शरीर सुन्दर, स्त्री ठीक, लड़के आज्ञाकारी, बहुएँ अच्छे घर की...

मुमुक्षु : ऐसा तो सबको होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब होता नहीं, लो कहते हैं परन्तु यह तो किसी के यहाँ होता है।

मुमुक्षु : होवे उसमें सन्तोष माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : दीपचन्द सेठिया है न? उनके यहाँ सब बाहर की सुविधाएँ हैं। दीपचन्द सेठिया सरदारशहर। कहते थे। अभी उन्हें सब समानता। लड़के, उनकी बहू अच्छे घर की, तेरापंथी गृहस्थों की हो, स्थानकवासी तेरापंथी, तो भी उसे बहुत वह। पाँच-सात बहुएँ हों तो सबके गहने सबको दे नहीं। सबके गहने एक जगह रखे। जिसको चाहिए हो, वह ले जाना। ऐसा कि कुछ यह मेरा-तेरा होवे तो फिर वापस विवाद उठे।

अच्छे घर की लड़कियाँ हों, इसलिए विवाद टालकर शान्ति है। उनके घर में बहुत शान्ति है। उनकी लाईन ही अलग है। सेठिया के घर की। सवेरे से शाम तक सब खाने में, पीने में, सबमें धर्म के गायन होते हैं। बाहर की लाईन बहुत ऐसी है। वह तो कहते थे परन्तु कहे हमारे बर्तन उठानेवाली लड़की, महिला आती है, वह यह बोलती है – हम आनन्द में रहनेवाले हैं, राग आदि हम नहीं हैं, शरीरादि हमें नहीं है, पैसा हमारा नहीं है, स्त्री हमारी नहीं है – ऐसा कहती है। वह भी अच्छे घर की पैसेवाली... ऐसा बोलते थे। काम करनेवाली हो, उसे भी कितना ही पुण्य (होता है), वह भी गहने पहनकर, वस्त्र, बर्तन करते। वे कहते थे। पुण्य का कहते थे कि भरत चक्रवर्ती का अंश है हमारे पास तो। परन्तु धूल में क्या है? ऐसा तो अनन्त बार मिला। वह तो दुःख का सरदार है। आहाहा! कहो, ऐसी सब समानता किसी को होती है परन्तु वह तो पुण्य की, धूल की समानता न? वह तो दुःख का हर्ष है। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द का सागर प्रभु अन्दर है, उसमें जिसकी नजर नहीं है और उसमें जिसकी रमणता नहीं है। नजर नहीं अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! वह तो संसाररूपी महासागर में भटकेगा। यह ईर्यासमिति की बात हुई। लो, अब भाषासमिति। पाँच समिति में दूसरी। यहाँ तो समिति का रूप ही दूसरे प्रकार का है। ६२वीं गाथा।

गाथा-६२

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं ।
 परिचत्ता सपर-हिदं भासा-समिदी वदंतस्स ॥६२॥
 पैशून्यहास्यकर्कशपरनिन्दात्मप्रशन्सितं वचनम् ।
 परित्यक्त्वा स्व-पर-हितं भाषा-समितिर्वदतः ॥६२॥

अत्र भाषासमितिस्वरूपमुक्तम् । कर्णेजपमुखविनिर्गतं नृपतिकर्णाभ्यर्णगतं चैकपुरुषस्य एककुटुम्बस्य एकग्रामस्य वा महद्विपत्कारणं वचः पैशून्यम् । क्वचित् कदाचित् किञ्चित् परजनविकाररूपमवलोक्य त्वाकर्ण्य च हास्याभिधाननोकषायसमुप-जनितं ईषच्छुभ-मिश्रितमप्यशुभकर्मकारणं पुरुषमुखविकारगतं हास्यकर्म ।

कर्णशष्कुलीविवराभ्यर्णगोचरमात्रेण परेषामप्रीतिजननं हि कर्कशवचः । परेषां भूता-भूतदूषणपुरस्सरवाक्यं परनिन्दा ।

स्वस्य भूताभूतगुणस्तुतिरात्मप्रशन्सा ।

एतत्सर्वमप्रशस्तवचः परित्यज्य स्वस्य च परस्य च शुभशुद्धपरिणतिकारणं वचो भाषासमितिरिति ।

तथा चोक्तं श्रीगुणभद्रस्वामिभिः ह

(मालिनी)

समधिगत-समस्ताः सर्व-सावद्य-दूराः,
 स्वहितनिहितचित्ताः शान्तसर्वप्रचाराः ।
 स्वपरसफलजल्पाः सर्वसङ्कल्पमुक्ताः,
 कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः ॥

तथा च ह

पैशून्य, कर्कश, हास्य, परनिन्दा प्रशंसा आत्म की।
छोड़ें कहे हितकर वचन, उसके समिति है वचन की ॥६२ ॥

अन्वयार्थ :—[पैशून्यहास्यकर्कशपरनिन्दात्मप्रशंसितं] पैशून्य (चुगली), हास्य, कर्कश भाषा, परनिन्दा और आत्मप्रशंसारूप वचन [परित्यक्त्वा] परित्यागी को, [स्वपरहितं वदतः] जो स्वपरहितरूप वचन बोलता है, उसे [भाषासमितिः] भाषासमिति होती है।

टीका :—यहाँ भाषासमिति का स्वरूप कहा है।

चुगलखोर मनुष्य के मुँह से निकले हुए और राजा के कान तक पहुँचे हुए, किसी एक पुरुष, किसी एक कुटुम्ब अथा किसी एक ग्राम को महा विपत्ति के कारणभूत—ऐसे वचन, वह पैशून्य है। कहीं कभी किन्हीं परजनों के विकृतरूप को देखकर अथवा सुनकर हास्य नामक नोकषाय से उत्पन्न होनेवाला, किञ्चित् शुभ के साथ मिश्रित होने पर भी अशुभकर्म का कारण, पुरुष के मुँह के विकार के साथ सम्बन्धवाला, वह हास्यकर्म है। कर्ण छिद्र के निकट पहुँचनेमात्र से जो दूसरों को अप्रीति उत्पन्न करते हैं, वे कर्कश वचन हैं। दूसरे के विद्यमान—अविद्यमान दूषणपूर्वक के वचन (अर्थात्, पर के सच्चे तथा झूठे दोष कहनेवाले वचन) वह परनिन्दा है। अपने विद्यमान—अविद्यमान गुणों की स्तुति, वह आत्मप्रशंसा है। — यह सब अप्रशस्त वचनों के परित्यागपूर्वक स्व तथा पर को शुभ और शुद्धपरिणति के कारणभूत वचन, वह भाषासमिति है।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २२६ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

हेय-ग्राह्य अर्थों को जानें, हिंसादिक पापों से दूर।
निज-हित निहित चित्त है जिनका, इन्द्रिय शान्त हुई सम्पूर्ण ॥
निज-पर हितकारी वाणी है हुए सर्व संकल्प विमुक्त।
सर्व प्रपञ्च विहीन मुनीश्वर क्यों न पात्र बन होंगे मुक्त ॥

श्लोकार्थ :—जिन्होंने सब (वस्तुस्वरूप) जान लिया है, जो सर्व सावद्य से

दूर हैं, जिन्होंने स्वहित में चित्त को स्थापित किया है, जिन्होंने सर्व *प्रचार शान्त हुआ है, जिनकी भाषा स्वपर को सफल (हितरूप) है, जो सर्व सङ्कल्परहित हैं, वे विमुक्त पुरुष इस लोक में विमुक्ति का भाजन क्यों नहीं होंगे ? (अर्थात्, ऐसे मुनिजन अवश्य मोक्ष के पात्र हैं।)

गाथा-६२ पर प्रवचन

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं ।
परिचत्ता सपर-हिदं भासा-समिदी वदंतस्स ॥६२॥

नीचे इसका हरिगीत ।

पैशून्य, कर्कश, हास्य, परनिन्दा प्रशंसा आत्म की ।
छोड़ें कहे हितकर वचन, उसके समिति है वचन की ॥६२॥

टीका :—यहाँ भाषासमिति का स्वरूप कहा है। चुगलीखोर मनुष्य के मुँह से निकले हुए... चुगलीखोर मनुष्य होते हैं न ? किसी की कहीं भिड़ावे, किसी का कहीं भिड़ावे। आहाहा! चुगलीखोर मनुष्य के मुँह से निकले हुए और राजा के कान तक पहुँचे हुए, ... राजा के कान तक जाए। किसी एक पुरुष, ... की चुगली खोर। किसी एक पुरुष की चुगली करे या किसी एक कुटुम्ब अथा किसी एक ग्राम को... ऐसा महा विपत्ति के कारणभूत... उस कुटुम्ब को, मनुष्य को और गाँव को बड़ी आपत्ति आ पड़े ऐसे शब्द बोलना और राजा के कान में जाए तो हैरान कर डाले।

मुमुक्षु : अभी तो राजा रहे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राजा रहे। परन्तु वे तो दूसरे होते हैं न, कार्यकर्ता दूसरे होते हैं, यह तो वह का वह हुआ।

महा विपत्ति के कारणभूत—ऐसे वचन, वह पैशून्य है। चुगली-चुगली। आहाहा! किसी के गुप्त ऐसे भाव हों, वह चुगलीखोर खोले और राजा के पास जाए तो लूटे। जीभ काट डाले, हाथ काट डाले। आहाहा! ऐसे वचन धर्मात्मा नहीं बोलता, ऐसा

* प्रचार=व्यवस्था; कार्य सिर पर लेना; आरम्भ; बाह्य प्रवृत्ति।

कहते हैं। समझ में आया ? ऐसे शब्द धर्मात्मा को नहीं होते। शब्द ही ऐसे नहीं होते अर्थात् ऐसा भाव नहीं होता, ऐसा कहना है। शब्द तो जड़ हैं। ऐसे पैशून्यभाव छोड़कर... मुनि समिति से स्व-पर के हित के वाक्य कहे, ऐसा कहते हैं।

अब हास्य की व्याख्या करते हैं। हास्य कहीं.. किसी जगह कभी... किसी काल में किन्हीं परजनों के विकृतरूप को देखकर... तीन शब्द हैं। दूसरे जनों का विकृतरूप। भाण्ड का रूप या ऐसा रूप देखकर कहीं कभी किन्हीं... किसी जगह किसी काल में और कुछ भी थोड़ा परजनों के विकृतरूप को देखकर अथवा सुनकर हास्य नामक नोकषाय से उत्पन्न होनेवाला, किञ्चित् शुभ के साथ मिश्रित होने पर भी अशुभकर्म का कारण, पुरुष के मुँह के विकार के साथ सम्बन्धवाला,... ऐसे मुख ऐसा करके ऐसी मजाक करते हैं न ? आहाहा ! ऐसे शब्द बोले, सामनेवाले को मरना पड़े। लोहे के बाण जैसे कठोर लगे। अरे ! सज्जनों को ऐसे शब्द होंगे ? यहाँ तो मुनि की बात है। मुनि ऐसे भाव को छोड़ देते हैं। ऐसे भाव नहीं होते। वह हास्यकर्म है। लो।

मुमुक्षु : जरा शुभ के साथ मिश्रित....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शुभ के साथ मिश्रित कहा। शुभ अर्थात् क्या ? जरा सा अन्दर... है तो सब अशुभ। परन्तु यह बाहर के हैं न ? हास्य, मस्करी करते हैं न ? दाँत निकालते हैं, वह पाप ही है।

कर्ण छिद्र के निकट पहुँचनेमात्र से जो दूसरों को अप्रीति उत्पन्न करते हैं, वे कर्कश वचन हैं। कर्कश वचन। ऐसे कठोर वचन बिच्छू के डंक जैसे लगते हैं। ऐसे वचन सज्जनों को, धर्मात्मा को नहीं हो सकते। आहाहा ! दूसरे के विद्यमान—अविद्यमान दूषणपूर्वक के वचन... अब देखो यह। दूसरे लोगों में दूषण हो या दूषण न हो। विद्यमान—अविद्यमान दूषणपूर्वक के वचन... निन्दा है न ? उसमें पर को दुःख होता है। आहाहा ! दूसरे के विद्यमान... दूषण और अविद्यमान दूषण... न भी हो। ऐसे वचन (अर्थात्, पर के सच्चे तथा झूठे दोष कहनेवाले वचन)... ऐसा। न हो, उसे कहना और होवे, उसका कहना। दोष होवे, उसे कहना और दोष न हो, उसे वापस दोष लगाना। दोनों झूठे दोष कहनेवाले वचनों को परनिन्दा कहा जाता है। ऐसे शब्द उसे पाप के भाव हैं। इन सज्जनों को ऐसे शब्द नहीं हो सकते। देखा इसमें ? पर में दूषण होवे, तो भी कहना, वह भी परनिन्दा

है - यहाँ तो ऐसा कहते हैं। न होवे और कहना, वह तो एक दूषण है, झूठ है ही, परन्तु है, उसके दूषण कहे तो सामनेवाले को दुःख होता है न? समझ में आया? ऐसे शब्द छोड़कर, ऐसा कहते हैं। परित्यागी है न अन्तिम? यह सब अप्रशस्त वचनों को छोड़कर, ऐसा कहते हैं।

और अपने विद्यमान-अविद्यमान गुणों की स्तुति,... देखो! सच्चे गुण हों और अपनी स्तुति करना, वह भी एक निन्दा है। अपनी प्रशंसा है, कहते हैं। आहाहा! और अविद्यमान। नहीं गुणों को गुण कहना, वह तो दोष है ही। समझ में आया? आत्मप्रशंसा। परन्तु है, ऐसे गुणों को भी बाहर फूँकना / कहना, वह भी एक अप्रशस्त भाव है।

मुमुक्षु : खबर कैसे पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहना था उसे? खबर का क्या काम है। ऐई!

मुमुक्षु : ठगाने देना न उसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुझे क्या? दूसरे को दुःख हो, ऐसा करने का कारण क्या?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन किसे ठगता है? किसी के ऐसे दूषण प्रगट करना, वह सज्जन का काम नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। होवे, ख्याल में आ जाए, तथापि कहना शोभा देता है? एक भगवानजीभाई कच्छी थे। मूली में। स्थानकवासी थे परन्तु उन्हें हमारे प्रति बहुत प्रेम था। बहुत पढ़े हुए थे। साधु को पढ़ावे ऐसे थे। मूली में भगवानजी कच्छी। वे एक बार तो ऐसा कहते थे कि वह कुत्ती आकर बैठी हो। क्या कहलाता है उसे जरा ऐसा करके? परन्तु अपने हट कहना, वह उसे तो कुछ नहीं परन्तु अपने को शोभा नहीं देता, ऐसा कहते थे। अपन हट-हट कहते हैं। एक बार बात करते थे, बहुत शास्त्र पढ़े हुए। ...शास्त्र का पठन बहुत था। उन्हें हमारे प्रति बहुत प्रेम था। स्थानकवासी में होशियार कहलाते थे। एक वे भगवानजीभाई और एक दामोदर सेठ यहाँ दामनगर दो और तीसरे वीरजीभाई के पिता ताराचन्दभाई। ये तीनों शास्त्र के पढ़नेवाले, पूरे काठियावाड़ में थे। उसमें नीति में ताराचन्दभाई अधिक। ऐसे सब तीनों में अन्तर था। वीरजीभाई के पिता, ऐसे नीतिवाले बहुत। ताराचन्दभाई शास्त्र पढ़ावे। दृष्टि खोटी, दृष्टि खोटी। ऐई! जयन्तीभाई!

ताराचन्दभाई को देखा था ? वीरजीभाई के पिता । ऐसे बड़े पण्डित कहलाये, हों ! साधु की टोली को पढ़ावे, अर्जिकाओं को पढ़ावे परन्तु दृष्टि विपरीत थी ।

एक तो हम पहले-पहले (संवत्) १९८२ में जामनगर गये थे और जती के उपाश्रय में उतरे थे । व्याख्यान दिया । लोग तो बहुत हजारों लोग । १९८२ के वर्ष की बात है । उसमें एक वाक्य आया, जो कुछ मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता, वह क्रिया पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं । भाई ! यह आता है न ? नामकर्म में । यह तो आता है । ज्ञानसागर है न ? जामनगर की ज्ञानसागर पुस्तक है । ऐसा कि चार प्रकार से शुभनामकर्म बँधता है । 'मन की सरलता, कालुजोयाय सुजोयाय । यह अविस्वादाद जोगाणं ।' इसलिए कोई ऐसा कहे कि मन की सरलता के परिणाम हैं, वह धर्म है, यह नहीं, कहा । मन की सरलता का विकल्प है, वह पुण्य है । ऐसे तीनों काया के सरलता के भाव हैं, वे पुण्य हैं, धर्म नहीं । इसलिए उन्हें तो जरा बात उलटी बैठी हुई थी । कोई नहीं था, तब शाम को अकेले आये । महाराज ! ऐसी बात तो लोगों को... मैंने कहा क्या है ? लोगों को अब चाहे जो हो । तुम देखो, ज्ञानसागर में देखो । कहा चार प्रकार से शुभ नामकर्म बँधता है और चार प्रकार से अशुभ नामकर्म बँधता है । मन, वचन, काया की असरलता और विस्वादाद / झगड़ा वह पाप बाँधता है । मन, वचन, काया की सरलता के परिणाम, वह पुण्य बाँधता है । पश्चात् मन, वचन, काया की सरलता के परिणाम, वे धर्म-संवर हैं, बिल्कुल नहीं । ज्ञानसागर में आता है । वे साधु भड़क गये, परन्तु अकेले, हों ! लोग शान्त । कोई नहीं था, तब शाम को आये । महाराज ! यह क्या ? मैंने कहा, यह मार्ग है, लोगों को जँचे या न जँचे, उससे क्या हुआ ? वहाँ तो अकेली क्रिया में प्रौषध करे और प्रतिक्रमण करे, वह सब भाव धर्म है, ऐसा मानते हैं । धूल में भी धर्म नहीं है, कहा । मिथ्यात्वसहित राग की मन्दता है परन्तु व्यक्ति शान्त कुछ बोले नहीं ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं । धर्म-वर्म प्राप्त करने में बाहर का कोई कारण है ही नहीं ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो एक पात्र गिना है, एक अपेक्षा से । परन्तु कौन सी

सरलता ? ऐसी सरलता तो अनन्त बार की है। हुआ क्यों नहीं ? नामकर्म शुभभाव से पुण्य बँधता है, ऐसा पाठ है। सब... है। ज्ञानसागर में पाठ है। पहले वह ज्ञानसागर सीखे हुए थे न ? १९६८ के वर्ष में। पालियाद। पालेज से आये, तब पहले ये सीखे थे। ज्ञानसागर के ये थोकड़ा सब। चार प्रकार से पुण्य बाँधे। मन की सरलता... ऐसा शब्द है। काया की सरलता, मन की सरलता, वाणी की सरलता। बापू! मार्ग तो यह है, कहा। शास्त्र में लिखा है, देखो यह। वह धर्म नहीं है। सरलता पुण्य है, वक्रता पाप है और उस सरलता तथा वक्रतारहित आत्मा की दृष्टि और अनुभव करना, वह धर्म है। परन्तु वे बेचारे भड़क गये थे। लो कितने ही साधु-आर्यिकाओं को पढ़ावे, परन्तु यह बात सुनकर भड़क गये थे। देखो ! कहा, तुम्हारे ज्ञानसागर में लिखा है न ? तुम्हारे पुनातर, पुनातर से प्रकाशित है न ? जामनगर के पुनातर है, ज्ञानसागर छपाया है, वह बाहर चलता है। स्थानकवासी में वह बहुत चलता है। थोकड़ा सीखे उसमें पहले यही सीखना। छह काय, नव तत्त्व, गुणस्थान, सब... है अपने यहाँ सब है। प्रत्येक पुस्तक है। यहाँ तो मन, वचन और काया के झुकाववाला भाव, चाहे तो शुभ या अशुभ, वह बन्ध का कारण है। आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु की सन्मुखता का भाव, धर्म है। कहो, समझ में आया ?

अपने विद्यमान-अविद्यमान गुणों की स्तुति, वह आत्मप्रशंसा है।—यह सब अप्रशस्त वचनों के परित्यागपूर्वक स्व तथा पर को शुभ और शुद्धपरिणति के कारणभूत वचन,... लो, ठीक। या सामनेवाले को शुभभाव हो, ऐसा निमित्त-वाणी और या शुद्धता हो, ऐसा निमित्त-वाणी। वाणी में यह आता है। समझ में आया ? स्व तथा पर को... देखो न ! अपने को भी शुभ और शुद्ध तथा पर को भी शुभ और शुद्ध का कारण कहा, निमित्त है न।

भगवान आत्मा राग से रहित है, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित है, यह शुद्ध के निमित्त के वचन हैं। स्वयं स्वरूप में स्थिर न हो, तब भगवान की भक्ति, पूजा, नाम-स्मरण का भाव होता है, यह भाषासमिति शुभ में निमित्त है। समझ में आया ? कारण कहा है यहाँ तो, ऐई ! शुभभाव को, शुद्धपरिणति को कारणभूत है। कारणभूत वह करे तब न ? ऐसी भाषासमिति है तो शुभभाव। भाषासमिति, बोलना, वह भी एक शुभभाव है। संवर-निर्जरा नहीं है, धर्म नहीं है। आहाहा ! लो, इसे भाषासमिति कहते हैं। मुनि धर्मात्मा को तो ऐसा स्व-पर की निन्दा और प्रशंसारहित, स्व-पर को शुभ और शुद्ध का निमित्त, ऐसी भाषा

होती है। भाषा तो भाषा के कारण से है, परन्तु ऐसा उसका भाव है, ऐसा। ऐसा शुभभाव होता है।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २२६ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि... लो!

समधिगत-समस्ताः सर्व-सावद्य-दूराः,
स्वहितनिहितचित्ताः शान्तसर्वप्रचाराः।
स्वपरसफलजल्पाः सर्वसङ्कल्पमुक्ताः,
कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः ॥

श्लोकार्थः :—जिन्होंने सब (वस्तुस्वरूप) जान लिया है,... धर्मात्मा। मुनि ने तो जगत का सब स्वरूप जाना है। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, जीव, अजीव, प्रत्येक छह द्रव्य का स्वरूप भगवान ने जो कहा, परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने छह द्रव्य कहे, उनके अन्तर्भेद नो कहे, वह सब जिसने जान लिया है। पुण्य, वह पुण्य है; पाप, वह पाप है; आस्रव, वह आस्रव है। आत्मस्वभाव, वह स्वभाव है। उसके आश्रय से होनेवाली संवर-निर्जरादशा, वह निर्मलदशा है। अजीव वह अजीव है। ऐसे सब तत्त्वों की पृथक्-पृथक् स्थिति जैसी है, वैसी जिसने जान ली है।

जो सर्व सावद्य से दूर हैं,... मुनि की बात है न? उन्हें बिल्कुल सावद्य के परिणाम (नहीं हैं)। आहाहा! यह तो मकान बनावे, वहाँ स्वयं खड़ा रहे। कितने पत्थर आये? धूल कहाँ आयी? व्यवहार का भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा! गजब बात है। अपने नाम के दो-दो लाख, पाँच-पाँच लाख के मकान बनाये। अकेला सावद्य-पाप है। ऐसे पाप के वचन मुनि को नहीं होते। जिन्होंने स्वहित में चित्त को स्थापित किया है,... आहाहा! अपने ज्ञान की दशा और स्वहित में है। उस ज्ञान में स्वहित का स्थापन है। स्वहित में चित्त को स्थापित किया है,... मेरा स्वभाव शुद्ध आनन्द, उसमें मुझे रहना, ऐसा स्वहित जिसने चित्त में स्थापित किया है। देखा?

जिन्होंने सर्व प्रचार शान्त हुआ है,... अर्थात्? कुछ साज-समहाल करनी हो कि भाई! यह पाठशाला करनी हो तो इसकी समहाल मैं करूँगा। ऐसा मुनि को नहीं हो सकता। आहाहा! एक पुस्तक बनाओ, यह सब व्यवस्था मैं करूँगा। मैं प्रूफ देख दूँगा।

मुमुक्षु : बराबर है या नहीं, ऐसा तो निश्चित करना चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है, यह कोई कहे उसे कहे परन्तु वहाँ साज-समहाल सिर पर काम ले ले कि इतना काम तो तुम्हारे करना पड़ेगा। मुनि के सिर पर कोई बोझा नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। भाई! यह तुम्हारे नाम का पत्रक बाहर लगाते हैं, इसलिए तुम्हें इस पत्र में एक-दो लेख देने पड़ेंगे। यह बोझा मुनि को नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रचार का इनकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो न, क्या कहते हैं यह ? **प्रचार=व्यवस्था; कार्य सिर पर लेना; आरम्भ; बाह्य प्रवृत्ति।** इतना काम करना पड़ेगा। ये लड़के हैं। अपन छात्र करते हैं। छह छात्र हैं, इनमें से सवेरे आधे घण्टे तुम्हें यहाँ हमेशा उपदेश देना। मुनि ऐसा काम सिर पर लेते ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हं... ऐसा है। और फिर भी शुभ आता है, परन्तु तो भी काम सिर पर लेना, इतना काम तो हर रोज तुम्हें करना ही पड़ेगा। अच्छे लोगों पर हमेशा दो पत्र तो तुम्हें लिखने ही पड़ेंगे, यह काम मुनियों का नहीं है। आहाहा! अपने आता है न? प्रवचनसार में नहीं आता। क्या कहते हैं उसे ? क्रमप्रक्रम ? मुनि तो ऐसे आनन्द में मौज करते हैं। हलवा, हलवा, हलवा उन्हें अब यह करना, यह करना, पत्र लिखना... पत्र आवे तब उनके उत्तर देना, यह बोझ मुनि को नहीं होता। आहाहा! थोक के थोक आवे। सवेरे के पचास सौ पत्र, वापस उसके जवाब लिखे हों। उसे व्यक्ति रखा हो। लिखो। यह तो अकेला संसार का धन्धा है। संसार की दुकानें चली हैं। आहाहा! प्रभु का मार्ग ऐसा है। मुनि तो निवृत्त... निवृत्त... निवृत्त... निवृत्त... निवृत्त... रागरहित शुद्धता में जहाँ रम रहे हैं, उन्हें ऐसे काम सिर पर बोझा, वह हो ही नहीं सकता। समझ में आया ?

कार्य सिर पर लेना; आरम्भ; बाह्य प्रवृत्ति। यह मुनि को नहीं हो सकता। यहाँ एक पाँच लाख का मन्दिर बनता है, वहाँ हमेशा तुम्हें क्लास लेने आना है, देखने आना है, बस। यह काम मुनियों का नहीं है। आहाहा! ऐसा काम मुनि सिर पर नहीं लेते। आहाहा! **जिनकी भाषा स्व-पर को सफल (हितरूप) है,...** ऐसा कहते हैं। जिसमें अपना हित हो, ऐसा हो अथवा पर का हित हो, ऐसी ही भाषा होती है। जिसमें एकेन्द्रिय प्राणी भी मरे,

हिंसा हो, ऐसी भाषा मुनि को नहीं होती। जो सर्व संकल्परहित हैं, ... भाषा देखो, आहाहा! संकल्प ही यहाँ नहीं है। आनन्द की लहर में जहाँ उछले, जहाँ सन्त-नग्न दिगम्बर मुनि वे तो जंगल में बसते हैं। आहाहा! वीतरागी मुनि तो संसार से पर, पार होते हैं। यह जब मकान में हो, तब वे वन में होते हैं। ये बोलचाल करे, तब प्रसन्न हो, वे मौन हों। आहाहा! पन्थ ही अलग है। वे विमुक्त पुरुष इस लोक में विमुक्ति का भाजन क्यों नहीं होंगे? आहाहा! ऐसे मुक्ति में क्यों नहीं जाएँगे? (अर्थात्, ऐसे मुनिजन अवश्य मोक्ष के पात्र हैं।) लो, आहाहा! जिनकी दशा अन्तर में आनन्द का उछाल, लहरें उछल रही हैं। जिन्हें कभी शुभ विकल्प आता है, तथापि उनका आदर नहीं है, ऐसे मुनि मुक्ति में क्यों नहीं जाएँगे? कहते हैं। आहाहा! जरूर जाते हैं। लो! इसके अतिरिक्त अज्ञानी बन्ध के भाव ले, और मुनिपना माने, वह संसार में क्यों नहीं जाएगा? अवश्य संसार में जाएगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)